अनामिका की स्त्री दृष्टि

सत्यनारायण,

अनामिका एक अग्रणी कवयित्री होने के साथ–साथ गम्भीर स्त्री विमर्श की अध्येता भी है। उन्होंने आलोचना, उपन्यास में अपनी लेखनी चलाई है। स्त्रीत्व का मानचित्र उनकी महत्वपूर्ण आलोचना है। अनामिका स्त्री ही नहीं एक प्रबुद्ध स्त्री लेखिका है। वह स्त्री विषयक पहलुओं पर बेवाक कलम चलाती है। स्त्री आयामों पर गम्भीर चिंतन करती है। उन बिंदुओं को अन्वेषण करती है जो स्त्री विषयक सोच से जुड़कर आगे बढ़ते हैं। इतना ही नहीं अस्मिता आन्दोलन में स्त्री की भूमिका का निर्धारण भी करती है।

उनके साहित्य में स्त्री विमर्श कई पहलू चित्रित है। कहीं स्त्रीत्व वाद है, कहीं इनकी चुनौतियाँ हैं, कहीं इसके प्रश्न है, कहीं इसकी सम्भावनाएं हैं। मुलतः सत्यवती कॉलेज दिल्ली में अंग्रेजी पढ़ाते–पढ़ाते उन्होंने जीवन का महत्वूपर्ण पड़ाव पार कर लिया किन्तु अपने अन्दर को स्त्री का कतई नहीं भूला। वह लिखती है, ''मैं बार–बार यह कहना चाहूँगी कि हमारे हिंसाविहल, आतंकातुर समय की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि स्त्रियों ध्रुवस्वामिनी वाली कद काठी तो पा गई किन्तु पुरूष अभी भी रामगुप्त की मनोदशा में ही हैं, चन्द्रगुप्त नहीं हुए हैं।'' निश्चित ही अभी तक लेखिका स्त्री अधिकार एवं स्त्री कानून से सहमत नहीं है।''[1] उसका मानना है, ''करूणा स्मबलित न्याय दृष्टि ही स्त्री दृष्टि है जो यह मानकर चलती है कि एक दमनचक्र का जवाब दूसरा दमनचक्र होता रहे, तब तो थमे ही नहीं सिलसिला। आदमी के व्यवहार और उसके भौतिक उत्पादों का सम्यक विनियोग ही आगे जाने वाली पीढ़ियों को व्यापारियों और विजेताओं के धम्मगजर से बचाएगा। जियो और जीने दो ही सर्वतोमुखी सार्वजनीक विकास का एक मात्र सूत्र है।''[2]

विकास और विश्वास समाज के लिए अतिआवश्यक पहलू है और दोनों के केन्द्र में मनुष्य है। यह बात भी सत्य है कि विश्वास करने से ही विश्वास पर खरा उतरने की कला का ज्ञान होता है। इसकेल आन्तरिक विवेक को जागृत करना ज्यादा जरूरी है क्योंकि आन्तरिक विवेक चरित्र निर्माण का आधार तैयार करता है जिससे विश्वास करने और विश्वास पर खरा उतरने की कला मनुष्य सीखता है। यहाँ स्त्री और पुरूष दोनों की बात की जा रही है क्योंकि दोनों ने ही विश्वास और विकास के पदों से गुजरना है।

इसी विश्वास के अवलम्ब ने अपराध व हिंसा को जन्म दिया है। यह विश्वास पशुवत आचरण का अधार बन गया है। इसी आचरण में दोहरा नुकसान स्त्री देह का हुआ है। ''कम्प्यूटर ऑपरेटर, रिशेप्सनीस्टठ, विमान परिचायिका, सेल्सगर्ल, मॉडल, होस्पीटलेटी गर्ल, टाईपिस्ट, स्टैनो, एल.डी.सी. की बोरियत दिनचर्या, नीरस कार्यालयी कार्य, तरह–तरह की डांट फटकार, बॉस या गॉड फादर का यौन दोहन, तद्तुल्य अपराध बोध, कुंठाए अन्य विकृतियाँ, गृह कलह, खंडित, मातृत्व आदि सब कुछ।''[3] विश्वास के खंडन पर आधारित है। इतना ही नहीं, माँ बनने के बाद भी एक विशेष प्रकार के सांचे में फिट हो जाने की सुध अक्सर बनी रहती है। ऊपर से विज्ञापन बताते हैं कि सुपर मम्मियों तो वही है जो सुपरबायर्स हो, बच्चों को तरह–तरह के उपहार खरीद कर दें। इस कसौटी पर जो खरी नहीं उतरती, वह कोई माँ है। उसे तो कुछ भी कहा जा सकता, कहीं भी लताड़ा जा सकता है। आँखे दिखाने की बराबरी में आँखे भी नहीं निकालेगी क्योंकि वह माँ है, पिता तो है नहीं, अब बराबरी कैसे हो, यह तो गलत है।''[4] यह भी सामाजिक तोहफा है स्त्री देह के लिए। लेखिका स्त्री को स्त्रीदेह कई जगह इस अर्थ में प्रयोग करती है कि स्त्री की देह उसकी पहचान है। स्त्री के बाल, गाल, उसके स्तन, उसकी कटि, उसके नितम्भ, उसकी टांगे बस इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस पर आप सहमत ना हो तो मुझे बताए एसिड पीड़िता से शादी क्यों नहीं की जाती। चेतना का प्रक्षालन एक लम्बी और दुरूह प्रक्रिया है अम अपने चेतना में किसी स्त्री के रूप को उसके शरीर से जोड़कर स्थान देते हैं।

स्त्री दृष्टिकोण इसके विपरीत होता है, ''पड़ोसी, सहकर्मी, अखबार वाले, सब्जीवाले, दूधवाले, पाठक, श्रोता, छात्र, कलाएंट, मरीज, ड्राईवर, माली, परचून की दुकान वाले, सेल्स ब्वॉज, एल.आई.सी. ऐजेन्ट, बैंक कर्मचारी, डाकघर वाले, चौकीदार, मंगते–भिखारी, कबाड़ी, अनाथालय वाले'' सबका दुःख अपने हिस्से ले लेती है और शोषण का शिकार हो जाती है क्योंकि वह पुरूष को देह से नहीं चेतना से स्वीकार करती है। सगे रिश्तों में भी पुरूष को बीमार माँ या उदास बहनों के सिर पर हाथ रखना, उनके साथ दिल खोलकर बात करना, उनकी इच्छा जानना, उनके मर्म को स्पर्श करना बिल्कुल भी जरूरी नहीं लगता। क्योंकि वह मुड़कर देखना पसंद नहीं करता।''[5]

मनुष्य के अस्तित्व की सार्थकता, प्राकृतिक संसाधनो से उसके अन्तर क्रियात्मक संवाद में है। स्वार्थपरकता और क्षुद्रता जनने वाला समूह एकाकीपन का शिकार बनता है। इसी एकाकीपन में यौनिकता को समझने की बजाय रूढ़ बन जाता है। यह रूढ़िवादिता स्त्री के लिए खतरा पैदा कर देती क्योंकि यौनिकता को अलग कर स्त्रीत्व संभव नहीं है। स्त्री की यौनिकता से अलग कर एक रूप से स्त्रीत्व का हनन ही होगा। तीसरा लिंग समाज द्वारा कितने प्रतिशत स्वीकारा गया है? सिर्फ पुरूष के जन्म पर नाचने के के अतिरिक्त और कोई आवश्यकता नहीं उसकी समाज में। समाज में स्त्री दृष्टि का एक और उदाहरण, ''बचपन में पिता की, किशोर रूप में भाई की, युवा अवस्था में पति की और बुढ़ापे में बेटे की अधीनता। लम्बे समय से भौतिक/आर्थिक/भावनात्मक परावलंबन स्त्री दृष्टि का केन्द्रीय सत्य रहा है।''[6]

स्त्री सम्बन्धी जितने विमर्श है उनकी व्याख्या सम्पुष्ट नहीं होता क्योंकि उसका लोक तात्विक आधार नहीं होता। आप समझ सकते लोक मनीषा में स्त्री सम्बन्धी दो द्विव्य विलोम आपस में टकराते दिखते हैं और यह आधार मजबूत है। क्योंकि सुखी और दुःखी दो तरह की स्त्री मानी जाती रही है। लोक कथाएं बहने/पत्नी/ननद/भाभी/सास/बहू यदि सहेलियाँ बन कर प्रकट होती तो रामराज की कल्पना करने की तुलसी को क्या आवश्यकता थी। राम राज की कल्पना की होती है, इसमें सत्यता नहीं होती। सत्यता होती तो मानस में धोबी प्रसंग में सीता को आधार किसलिए बनाया जाना था।

''स्त्री समाज एक ऐसा समाज है जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि की संकुचित सीमाओं के पास जाता है।''[7] यह समाज दृष्टि हो या ना हो परन्तु अनामिका की दृष्टि अवश्य है। 1970 के बाद समाज में सेक्स एवं जेंडर को लेकर बहस छीड़ गई थी। परन्तु दोनों शब्दों में प्रभावित तो नारी ही हुई। यह तो विज्ञान या मानव शास्त्र के तथ्य है कि सेक्स जीव विज्ञान पोषित होता और जेंडर सामाजिक पुकार का शब्द है। यह विवाद आज तक बिना दिशा भटक रहा है थमने का नाम नहीं ले रहा। परन्तु हम अर्धनाश्वीर की अवधारणा को भूलना नहीं चाहिए और एकरूपता को सम्भालना चाहिए। यह दृष्टि रखनी चाहिए।

''वैयक्तिक यातनाओं का सामाजिक संदर्शन स्त्री के प्रतिकार का एक आजमाया अस्त्र है। तकलीफ खतरनाक चीज होती है। उससे यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि स्त्री अनंत काल से अब तक अंधेरे कोने में पड़ी रहेगी।''[8] समाज को सोचना पड़ेगा कि स्त्री को लेकर उसकी दृष्टि क्या है और स्त्री को लेकर उसको अपनी दृष्टि को बदलना चाहिए। स्त्री दृष्टि की समर्थक अनामिका स्त्री ही रहना चाहती है, वह पुरूष नहीं बनना चाहती। उसका मानना है, ''एकाध आवेशमूलक सामाजिक घटना स्त्री पुरूष की लड़ाई का व्याकरण नहीं है। इसे मानवता के आदर्श के रूप में मानना चाहिए।''[9] दोहरी मानसिकता के मानदंडों को इकहरा करना पड़ेगा। दोस्त तो माँ भी हो सकती है, बेटी हो सकती है, प्रेमिका भी हो सकती है, बहन भी हो सकती है, बेटी भी हो सकती है। इसलिए हमें स्त्री पुरूष के सम्बन्ध को उच्चता एवं पवित्रता प्रदान करनी चाहिए। यह उच्च आशय भाव बिंब है। जीवन के सापेक्ष उच्च आशय इसी से बन सकते हैं। निश्चित रूप से सहज मानुषी और सच्चे साथी के रूप का विकल्प पुरूष नही बन सकता। स्त्री के सच्चे साथी के रूप का साथ पुरूष की भाव बुद्वि का कोष, रेचन की क्रिया, स्नेह की थपकी के साथ जीवन के नए मानदंड निर्धारित करती है। बस केवल दृष्टि बदलने पर की देर है।

संदर्भ सूची

1स्त्री मुक्ति : सांझा चुल्हा, अनामिका, पृष्ठ 62
2.वही पृष्ठ 37
3.वही पृष्ठ 42
4.वही पृष्ठ 69

5.वही पृष्ठ 87
6.वही पृष्ठ 92
7.वही पृष्ठ 103
8.वही पृष्ठ 53
9.वही पृष्ठ 44

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com